धर्म और मत में भेद जान लें तो धर्म का मर्म समझ में आजाएगा

धर्म शब्द को लेकर संसार में बहुत भ्रांतियां फैल रही है। यूँ कहिये संसार में धर्म की सत्य परिभाषा को न समझकर मत-मतान्तर की संकीर्ण सोच को धर्म के रूप में चित्रित किया जा रहा है। विश्व में मुख्य रूप से ईसाई, इस्लाम और हिन्दू धर्म प्रचलित है। ईसाई समाज अपने आपको प्रगतिशील मानता है और धर्म के नाम पर प्रलोभन देकर धर्म परिवर्तन करना अपना हक समझता है। अपने इस कृत्य को ईसाई समाज वह धर्म मानता है।मुस्लिम समाज हिंसा और कट्टरवाद के बल पर अपनी संख्या बढ़ाने को आतुर है। उसकी इस सोच के चलते विश्व की शांति पर खतरा मंडरा रहा है। अपने इस कृत्य को मुस्लिम समाज वह धर्म मानता है। हिन्दू समाज अनेक मत-मतान्तरों में विभाजित है। सभी की अपनी अपनी मान्यता अपना अपना विश्वास है। देवी देवताओं की मूर्तियों से लेकर पीरों की कब्रों तक, गुरुओं से लेकर साईं बाबा तक इसके नवनिर्मित अनेक विश्वास के प्रतीक हैं। इन सभी की पूजा करना हिन्दू समाज धर्म समझता है।

प्रत्येक मत अपनी मान्यताओं को सही और दूसरे की मान्यतों को गलत बताता है। इनके इस प्रपंच को देखकर विश्व का एक बड़ा वर्ग अपने आपको नास्तिक कहने लगा है। वह न तो भगवान को मानता है न ही धर्म की सत्य परिभाषा से परिचित हैं। इस लेख के द्वारा हम धर्म और मत के अंतर को समझने का प्रयास करेंगे।

शंका 1:- धर्म का अर्थ क्या हैं ?
उत्तर :-
1. धर्म संस्कृत भाषा का शब्द हैं जोकि धारण करने वाली धृ धातु से बना हैं। “धार्यते इति धर्म:” अर्थात जो धारण किया जाये वह धर्म हैं। अथवा लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु सार्वजानिक पवित्र गुणों और कर्मों का धारण व सेवन करना धर्म हैं। दूसरे शब्दों में यहभी कह सकते हैं की मनुष्य जीवन को उच्च व पवित्र बनाने वाली ज्ञानानुकुल जो शुद्ध सार्वजानिक मर्यादा पद्धति हैं वह धर्म है।

2 . जैमिनी मुनि के मीमांसा दर्शन के दूसरे सूत्र में धर्म का लक्षण है- लोक परलोक के सुखों की सिद्धि के हेतु गुणों और कर्मों में प्रवृति की प्रेरणा धर्म का लक्षण कहलाता हैं।

3. वैदिक साहित्य में धर्म वस्तु के स्वाभाविक गुण तथा कर्तव्यों के अर्थों में भी आया हैं। जैसे जलाना

और प्रकाश करना अग्नि का धर्म है और प्रजा का पालन और रक्षण राजा का धर्म है।

4. मनु स्मृति में धर्म की परिभाषा
धृति : क्षमा दमोअस्तेयं शोचं इन्द्रिय निग्रह :
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं ६/९
अर्थात धैर्य,क्षमा, मन को प्राकृतिक प्रलोभनों में फँसने से रोकना, चोरी त्याग, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि अथवा ज्ञान, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण हैं।
दूसरे स्थान पर कहा हैं आचार :परमो धर्म १/१०८ अर्थात सदाचार परम धर्म हैं

5 . महाभारत में भी लिखा है

धारणाद धर्ममित्याहु :,धर्मो धार्यते प्रजा : अर्थात
जो धारण किया जाये और जिससे प्रजाएँ धारण की हुई है वह धर्म है।

6 . वैशेषिक दर्शन के कर्ता महा मुनि कणाद ने धर्म का लक्षण यह किया है

यतोअभयुद्य निश्रेयस सिद्धि : स धर्म:
अर्थात जिससे अभ्युदय(लोकोन्नति) और निश्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि होती है, वह धर्म है।

शंका 2:- स्वामी दयानंद के अनुसार धर्म की क्या परिभाषा है ?

उत्तर :- जो पक्ष पात रहित न्याय सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है उसी का नाम धर्म और उससे विपरीत का अधर्म है।- सत्यार्थ प्रकाश 3 सम्मुलास
पक्षपात रहित न्याय आचरण सत्य भाषण आदि युक्त जो ईश्वर आज्ञा वेदों से अविरुद्ध है, उसको धर्म मानता हूँ। – सत्यार्थ प्रकाश मंतव्य

इस काम में चाहे कितना भी दारुण दु:ख प्राप्त हो , चाहे प्राण भी चले ही जावें, परन्तु इस मनुष्य धर्म से पृथक कभी भीं न होवें।- सत्यार्थ प्रकाश

शंका 3:- क्या हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि धर्म सभी समान हैं अथवा भिन्न है ? धर्म और मत अथवा पंथ में क्या अंतर हैं ?

उत्तर : -हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि धर्म नहीं अपितु मत अथवा पंथ हैं। धर्म और मत में अनेक भेद हैं।

1. धर्म ईश्वर प्रदत हैं और जिसे ऊपर बताया गया हैं, बाकि मत मतान्तर हैं जो मनुष्य कृत है।
2. धर्म लोगो को जोड़ता हैं जबकि मत विशेष लोगो में अन्तर को बढ़ाकर दूरियों को बढ़ावा देते है।
3. धर्म का पालन करने से समाज में प्रेम और सोहार्द बढ़ता है, मत विशेष का पालन करने से व्यक्ति अपने मत वाले को मित्र और दूसरे मत वाले को शत्रु मानने लगता है।
4. धर्म क्रियात्मक वस्तु हैं मत विश्वासात्मक वस्तु हैं।

5. धर्म मनुष्य के स्वाभाव के अनुकूल अथवा मानवी प्रकृति का होने के कारण स्वाभाविक है और उसका आधार ईश्वरीय अथवा सृष्टि नियम है परन्तु मत मनुष्य कृत होने से अप्राकृतिक अथवा अस्वाभाविक है।
6. धर्म एक ही हो सकता हैं , मत अनेक होते हैं।
7. धर्म सदाचार रूप हैं अत : धर्मात्मा होने के लिये सदाचारी होना अनिवार्य है। परन्तु मत अथवा पंथ में सदाचारी होना अनिवार्य नहीं है।
8. धर्म ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है अथवा धर्म अर्थात धार्मिक गुणों और कर्मों के धारण करने से ही मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त करके मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है जबकि मत मनुष्य को केवल पन्थाई या मज़हबी अथवा अन्धविश्वासी बनाता है। दूसरे शब्दों में मत अथवा पंथ पर ईमान लाने से मनुष्य उस मत का अनुयायी बनाता है। नाकि सदाचारी या धर्मात्मा बनता है।
9. धर्म मनुष्य को ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़ता है और मोक्ष प्राप्ति निमित धर्मात्मा अथवा सदाचारी बनना अनिवार्य बतलाता है परन्तु मत मुक्ति के लिए व्यक्ति को पन्थाई अथवा मती का मानने वाला बनना अनिवार्य बतलाता है। और मुक्ति के लिए सदाचार से ज्यादा आवश्यक उस मत की मान्यताओं का पालन बतलाता है।
10. धर्म सुखदायक है मत दुखदायक है।
11. धर्म में बाहर के चिन्हों का कोई स्थान नहीं है क्यूंकि धर्म लिंगात्मक नहीं है -न लिंगम धर्मकारणं अर्थात लिंग (बाहरी चिन्ह) धर्म का कारण नहीं है। परन्तु मत के लिए बाहरी चिन्हों का रखना अनिवार्य है जैसे एक मुसलमान के लिए जालीदार टोपी और दाड़ी रखना अनिवार्य है।
12. धर्म दूसरों के हितों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति तक देना सिखाता है जबकि मज़हब अपने हित के लिए अन्य मनुष्यों और पशुयों की प्राण हरने के लिए हिंसा रुपी क़ुरबानी का सन्देश देता है।

शंका 4 :- क्या धर्म अफीम हैं जैसा कि कार्ल मार्क्स ने बताया है ?
“Religion is the sigh of the oppressed creature, the heart of a heartless world, and the soul of soulless conditions. It is the opium of the people”

उत्तर :- कार्ल मार्क्स ने धर्म के स्थान पर मत को धर्म का स्वरुप समझ लिया। जैसा उन्होंने देखा और इतिहास में पढ़ा उसको देख कर तो हर कोई धर्म के विषय में इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा जैसा मार्क्स ने बतलाया। उन्होंने अपने चारों और क्या देखा ? मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा यूरोप, एशिया में इस्लाम के नाम पर भयानक तबाही, चर्च के पादरियों द्वारा धर्म के नाम पर सामान्य जनता पर अत्याचार को देखने पर उनका धर्म से विश्वास उठ गया। इसलिए कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम कि संज्ञा दे दी। जैसे अफीम को ग्रहण करने के पश्चात मनुष्य को सुध-बुध नहीं रहती वैसा ही व्यवहार धर्म के नाम पर मत को मानने वाले करते हैं। धर्म अफीम नहीं है अपितु उत्तम आचरण है। इसलिये धर्म को अफीम कहना गलत हैं , मत को अफीम कहने में कोई बुराई नहीं हैं।

धर्म और मत के अंतर को ठीक प्रकार से समझ लेने पर मनुष्य अपने चिंतन मनन से आसानी से यह स्वीकार करके के श्रेष्ठ कल्याणकारी कार्यों को करने में पुरुषार्थ करना धर्म कहलाता है इसलिए उसके पालन में सभी का कल्याण है।